जेन-ज़ी आंदोलन और ग्रामीण युवा

15 मई 2026 को भारत के मुख्य न्यायाधीश ने एक सुनवाई के दौरान बेरोज़गार नौजवानों के लिए **कॉकरोच** (तिलचट्टा) शब्द का इस्तेमाल किया। उनके अनुसार ये बेकार युवा सोशल मीडिया, पत्रकारिता और आरटीआई के माध्यम से 'सिस्टम' को निशाना बनाते हैं। जब उनके बयान को भारी आक्रोश का सामना करना पड़ा तब उन्होंने सफ़ाई देते हुआ कहा कि उनके बयान को तोड़-मरोड़ कर पेश किया गया है और युवा विकसित भारत के आधारस्तंभ हैं। इस अमानवीय निरुपण के प्रति फूटा आक्रोश मुख्य न्यायाधीश के स्पष्टीकरण से नहीं रुका। यह सोशल मीडिया पर एक सैलाब बन गया। करोड़ों युवा इसके सोशल मीडिया पेजों से जुड़ने लगे। कुछ ही हफ़्तों के भीतर इसके फ़ॉलोवरों की संख्या सबसे विशाल फ़ॉलोवरों वाली राजनीतिक पार्टियों को भी पार कर गई। इस आंदोलन को युवा असंतोष का क्षणिक प्रस्फुटन मानना इनके मूल कारणों को नज़रअंदाज़ करना होगा। ये दशकों से स्थापित एक ऐसी सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के खिलाफ़ आक्रोश का नतीजा है जो जनता के मुद्दों को हाशिए पर रखती है। सोशल मीडिया की पहुँच ने समाज के विभिन्न हिस्सों के असंतोष को एक साझा जगह दी और भौगोलिक दूरी को पाटकर इसे एक जनआंदोलन की शक्ल दी।

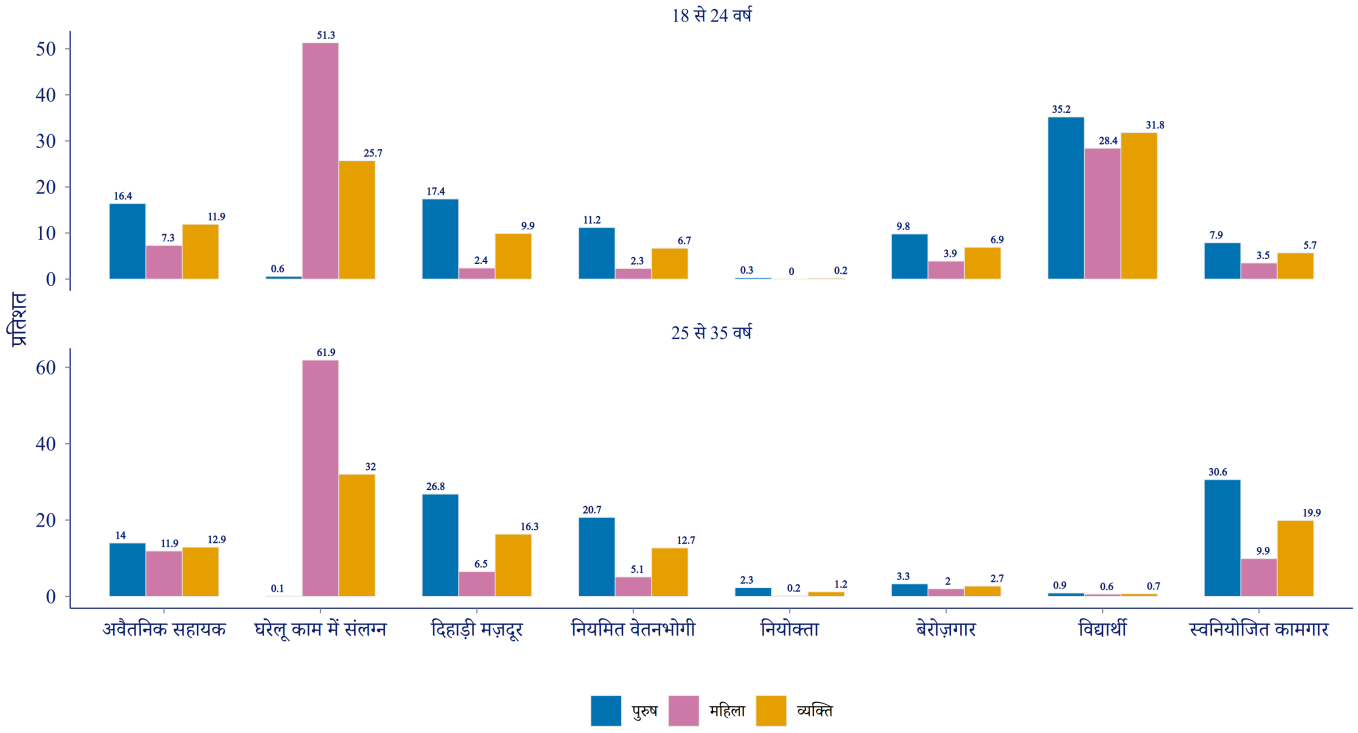
इसके नेता तो युवा हैं ही, इसको चलाने तथा विभिन्न मुद्दों पर मुखरता से अपनी बात रखकर पूरे देश का समर्थन जुटाने वालों में भी मुख्यत: युवा ही हैं। कॉलेज जाने वाले तथा उच्च शिक्षा प्राप्त पेशेवर युवा अग्रिम पंक्ति में दिख रहे हैं। ये वाकपटु हैं, सोशल मीडिया की आधुनिक भाषा जानते हैं, और विरोध करने के अनोखे तरीक़े अपनाते हैं। ख़ासकर सोशल मीडिया पर लोकप्रिय कंटेंट बनाकर लाखों लोगों तक अपनी बात पहुँचाते हैं। इस आंदोलन ने सूचना और नैरेटिव पर सरकारी एवं व्यावसायिक दबदबा कमज़ोर किया है और जन चेतना पर वैकल्पिक मीडिया की महत्ता को रेखांकित किया है। एक अखिल भारतीय आंदोलन में युवाओं का केंद्र-बिंदु पिछले कुछ दशकों में नया तो है ही, उनके नए तरीक़ों ने भी सरकारी तंत्र को दुविधा में डाल दिया है।

सोशल मीडिया को देखकर ऊपरी तौर पर यह आंदोलन शहर में निवास करने वाले शिक्षित तथा पेशेवर लोगों का आंदोलन लगता है। यह बात कुछ हद तक सही भी है। भारत जैसे देश में, जहाँ आबादी का एक बड़ा हिस्सा आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है और जहाँ कृषि तथा उससे जुड़ी गतिविधियाँ आजीविका का एक महत्त्वपूर्ण आधार हैं, ग्रामीण युवाओं को इस विमर्श से बाहर रखकर युवा असंतोष की प्रकृति को समग्रता में नहीं समझा जा सकता। आंदोलन की धुरी भले ही दिल्ली और मुंबई जैसे शहर हों, लेकिन जिस असंतोष को ये अभिव्यक्त कर रहे हैं वो बेहद पुराने हैं और उनकी गिरफ़्त में गाँव और शहर दोनों हैं। हालाँकि इस चर्चा में ग्रामीण युवाओं का अनुभव और उनकी समस्याएँ अपेक्षाकृत हाशिये पर रही हैं।

कहाँ हैं ग्रामीण युवा?

पीएलएफ़एस (पीरियोडिक लेबर फोर्स सर्वे) 2023-24 के अनुसार 18 से 24 वर्ष के एक-तिहाई युवा पढ़ाई कर रहे हैं। हर चौथा युवा घरेलू काम कर रहा है, तथा करीब बारह प्रतिशत युवा घर के उपक्रमों में अवैतनिक सहायक के रूप में काम रह रहे हैं। दस में से एक युवा दिहाड़ी मज़दूर है; सिर्फ़ सात प्रतिशत के पास ही नियमित मज़दूरी वाला रोज़गार है। घरेलू कामों में पुरुषों की भागीदारी नगण्य है। जितनी महिलाएँ शिक्षा संस्थानों में दाख़िल हैं क़रीब उतनी ही महिलाएँ पढ़ाई छोड़कर घर की चहारदीवारियों में भी महदूद हैं। इसके अलावा, जो युवा पढ़ाई छोड़कर रोज़गार में भी संलग्न हो रहे हैं, वो भी मुख्यत: दिहाड़ी मज़दूरी और अवैतनिक सहायक वाले काम कर रहे हैं। महिलाओं को पढ़ाई छोड़कर चौका-बर्तन का काम करना पड़ रहा है, और युवा पुरुषों को भी निम्न और बिना वेतन वाला काम करना पड़ रहा है।

18 से 24 और 25 से 35 वर्ष के युवाओं की 2023-24 के दौरान वर्तमान स्थिति



आँकड़ों का स्त्रोत : पीएलएफ़एस 2023-24

25 से 35 का आयु वर्ग का ज्यादातर हिस्सा शिक्षा समाप्त करके रोज़गार में संलग्न हो जाता है। 2023-24 में इस वर्ग में पढ़ाई कर रहे युवाओं का प्रतिशत एक से भी कम है। जिस तरह के रोज़गार इनको मिल रहे हैं वो इनकी ग्रामीण क्षेत्र में रोज़गार की स्थिति और युवाओं की हालत पर प्रकाश डालेगा। इनमें से क़रीब एक तिहाई घरेलू कार्यों में संलग्न हो जाते हैं, और सोलह प्रतिशत दिहाड़ी मज़दूर बनते हैं। हर पाँचवा युवा अपने घर के उपक्रम में स्वनियोजित कामगार है तथा तेरह प्रतिशत अवैतनिक सहायक हैं। यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि घर के उपक्रम में स्वनियोजित कामगार और अवैतनिक सहायक का मतलब मुख्यत: किसानी से है। यानी कि यह युवा वर्ग भी जीविकोपार्जन के लिए घर के काम और खेती पर ही निर्भर है। इनमें भी दिहाड़ी मज़दूरों का प्रतिशत नियमित वेतनभोगी मज़दूरों से ज्यादा है। शिक्षा समाप्त करने के बाद पुरुष ग्रामीण युवाओं को खेती और दिहाड़ी मज़दूरी का काम करना पड़ता है, जबकि महिलाओं को घर के भीतर के काम में लगना पड़ता है। दो–तिहाई महिलाएँ लेबर फ़ोर्स का हिस्सा तक नहीं बन पातीं।

खेती और घर के भीतर के काम में युवाओं के इतने बड़े तबक़े का संलग्न होना बेहतर रोज़गार की भारी कमी को दर्शाता है। इसके कारण आँकड़ों में बेरोज़गारों की संख्या तो कम दिखती है, लेकिन बेरोज़गारी की समस्या ख़त्म नहीं होती। वजह यह है कि भारत में ज्यादातर जोत बहुत छोटे आकार के हैं और पहले से संलग्न लोगों को ही समुचित काम नहीं प्रदान कर पा रहे हैं। समय के साथ खेती में आवश्यक श्रम की मात्रा कम होती है। ऐसे में नए युवाओं का आना खेती में नए रोज़गार के सृजन का संकेत बिल्कुल नहीं माना जा सकता। इसी तरह पढ़-लिखकर घरेलू काम में संलग्न होना भी

बेहतर रोज़गार की कमी का संकेत है। पुरुष तथा महिला युवाओं का बड़ा हिस्सा अपनी काबिलियत के अनुसार योगदान देने के बजाय बेकारी की ज़िंदगी जी रहा है।

कौशल और क़ाबिलियत के बावजूद

शैक्षणिक संस्थानों में दाख़िला लेने वाले युवाओं की संख्या पिछले कुछ दशकों में काफ़ी बढ़ी है, खासकर महिलाओं में। 18 से 24 वर्ष की महिलाओं में जहाँ 1993-94 में सिर्फ़ चार प्रतिशत ही विद्यार्थी थीं, वहीं 2023-24 में इनकी संख्या 28 प्रतिशत पहुँच गई। पुरुषों के मामले में यह 16 प्रतिशत से बढ़कर 35 प्रतिशत हो गया है। 25 से 35 आयु वर्ग में विद्यार्थियों का हिस्सा नगण्य रहा है क्योंकि इस पड़ाव में पीएचडी जैसे स्तर की ही पढ़ाई बहुत कम युवाओं द्वारा की जाती है। सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़े भी शिक्षण संस्थानों में बढ़ते दाख़िले की पुष्टि करते रहते हैं।

शिक्षा और रोज़गार के बीच 1990 के दशक के बाद एक विरोधाभासी नाता रहा है। शिक्षा का स्तर तो उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, लेकिन खेती के बाहर समुचित मात्रा में रोज़गार पैदा नहीं हो रहे हैं। युवाओं को उनकी क़ाबिलियत के अनुसार काम ही नहीं मिल पा रहा है। नवउदारवादी सुधारों के बाद के दौर को उच्च आर्थिक संवृद्धि वाला दौर माना जाता है। लेकिन रोज़गार और वेतन के मामले में यहाँ भी ट्रेंड विरोधाभासी रहा है। 18 से 24 और 25 से 35 के आयुवर्गों की स्थिति का विश्लेषण इस विरोधाभास को दर्शाता है। सिर्फ़ घरेलू कामों तक सीमित रहने वाली महिलाओं का प्रतिशत 1993-94 से अब तक मामूली रूप से कम हुआ है। अब भी आधी से ज़्यादा युवा महिलाएँ रोज़गार नहीं तलाश कर घर के कामों तक सीमित रहती हैं। नियमित वेतनभोगी युवाओं के हिस्से में मामूली बढ़ोत्तरी हुई है। जबकि दिहाड़ी मज़दूरों का हिस्सा गिरा है। यहाँ तक कि इस आयु वर्ग में उच्च शिक्षा प्राप्त युवाओं में कम शिक्षित युवाओं की तुलना में बेरोज़गारी बेहद **ज़्यादा** है।

शिक्षा बेहतर अवसरों और एक अच्छी ज़िंदगी का रास्ता सुनिश्चित करती है, ऐसी मान्यता भारत में है। चूँकि भारत की बहुसंख्य आबादी किसानों–मज़दूरों तथा छोटे स्तर के काम–धंधे करने वाले लोगों की है, अत: उच्च शिक्षा प्राप्त करके बेहतर कमाई कर पाना लगभग हर कामगार वर्ग के बच्चे का सपना होता है। सरकारी नौकरी और नियमित वेतन वाले रोज़गार की आकांक्षा विशेष रूप से व्यापक है। ख़ासकर इसलिए कि निजी क्षेत्र में मिलने वाला वेतन घर चला पाने लिए नाकाफ़ी होता है। यहाँ तक एक ही काम के लिए निजी क्षेत्र सरकारी क्षेत्र की तुलना में कई गुना कम वेतन देता है। इसके अलावा भारत में निजी क्षेत्र के रोज़गार में सामाजिक सुरक्षा मिलना भी विरल ही होता है। ऐसे में सरकारी नौकरी ग़रीबी-मुक्त ज़िंदगी का एकमात्र विकल्प बन पाती है। लेकिन सरकारी रोज़गार के सीमित अवसरों और सरकारी भर्तियों की अनिश्चितता ने शिक्षित युवाओं में निराशा पैदा की है। बड़ी संख्या में युवा वर्षों तक प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी करते रहते हैं, जबकि उनके लिए रोज़गार की कोई सुनिश्चित संभावना नहीं होती। इस प्रकार शिक्षा, जो कभी सामाजिक उन्नति का भरोसेमंद माध्यम समझी जाती थी, युवाओं के लिए लंबी प्रतीक्षा और अनिश्चितता का अनुभव बनती जा रही है।



जितिश कल्लात, उफनते ज्वार की लय, 2011-12.

अंसतोष की अभिव्यक्ति

कृषि संकट, रोज़गार की कमी, और काम के ख़राब हालात की समस्या को सरकारी मशीनरी के भ्रष्टाचार और संवेदनहीनता ने और गंभीर बना दिया है। इन समस्याओं का संज्ञान लेने की जगह पर मुख्यत : नवउदारवादी नीतियों की पैरोकार सरकारों ने इनको बढ़ने दिया है। निजीकरण, मज़दूर विरोधी कानूनों, कॉर्पोरेट–परस्त नीतियों ने पूँजी और श्रम के बीच की खाई को बढ़ाया है। एक तरफ़ जहाँ कामगारों की कमाई अपनी बुनियादी ज़रूरतों के लिए पर्याप्त नहीं है, वहीं पूँजी का मुनाफ़ा बेतहाशा बढ़ रहा है। सिर्फ़ शिक्षा के माध्यम से रोज़गार प्राप्त करने का पुराना रास्ता इस दौर में लोगों को एक गरिमामयी ज़िंदगी देने के लिए काफ़ी नहीं है। एक बेहतर ज़िंदगी की आशा शहरी युवाओं में भी है और गाँव के युवाओं में भी।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि ग्रामीण युवाओं का असंतोष किन रूपों में व्यक्त होता है? यह आवश्यक नहीं कि उनका असंतोष शहरी युवाओं की तरह डिजिटल अभियानों या सड़कों पर होने वाले प्रदर्शनों के रूप में ही सामने आए। यह सरकारी नौकरियों की माँग, भर्ती प्रक्रियाओं में देरी के विरुद्ध आंदोलन, आरक्षण के सवाल, न्यूनतम मज़दूरी, भूमि अधिकार, शिक्षा की बेहतर सुविधाओं और जातिगत भेदभाव के ख़िलाफ़ संघर्षों के रूप में भी प्रकट हो सकता है। खेती से विमुखता, शहरों की ओर पलायन और पारंपरिक सामाजिक संबंधों से बढ़ती दूरी भी इस असंतोष की अभिव्यक्तियाँ हैं। इन प्रक्रियाओं को केवल व्यक्तिगत चुनाव या बदलती जीवनशैली के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इनके पीछे ग्रामीण अर्थव्यवस्था और समाज में हो रहे व्यापक संरचनात्मक परिवर्तन मौजूद हैं।

यह संयोग नहीं है कि एक अजेय मानी जानी सरकार को जेन–ज़ी ने अपनी माँगे मनवाने के लिए मज़बूर कर दिया। परीक्षा पेपर लीक का मुद्दा उन सभी युवाओं के आक्रोश का नतीजा था जो शिक्षा के माध्यम से एक बेहतर ज़िंदगी की उम्मीद रखते हैं। ये युवा शहरों में भी हैं और गाँवों में भी। वो ठोस बदलाव चाहते हैं, और तत्काल चाहते हैं। भले ही जेन–ज़ी आंदोलन की धुरी देश की राजधानी है और अन्य शहर हैं, लेकिन कैमरों से दूर बसे ग्रामीण अंचलों के नवयुवा भी एक बेहतर ज़िंदगी और समाज की आकांक्षा में जेन–ज़ी आंदोलन के हिमायती हैं।

इसलिए ग्रामीण युवाओं के असंतोष को समझने के लिए उसे व्यक्तिगत निराशा, बेरोज़गारी या पीढ़ियों के बीच सांस्कृतिक अंतर के रूप में देखने के बजाय उसके संरचनात्मक आधारों की पड़ताल आवश्यक है। कृषि संकट, गैर–कृषि रोज़गार का अभाव, शिक्षित बेरोज़गारी, पलायन और सामाजिक असमानताएँ इस असंतोष की आधारभूमि हैं। भारत की युवा पीढ़ी के संकट को समग्रता में समझने के लिए ग्रामीण युवाओं के इन अनुभवों को केंद्र में लाना आवश्यक है। जेन–ज़ी का प्रश्न केवल डिजिटल दुनिया में सक्रिय शहरी युवाओं का प्रश्न नहीं है; यह उस पूरी पीढ़ी का प्रश्न है जो बेहतर जीवन की आकांक्षा रखती है, लेकिन जिसके सामने उन आकांक्षाओं को साकार करने के अवसर सीमित हैं।

उमेश यादव